आपने लिखा

'संदर्भ' के 12वें अंक से कुल मिलाकार निराशा हुई।

एक तरफ 'मैंने प्रयोग किया' नामक लेख है। इसमें दिए गए प्रयोग बच्चों के हिसाब से तो रोचक हैं परन्तु शिक्षकों के लिए इस तरह के छुट-पुट प्रयोग बिना किसी संदर्भ के क्या महत्व रखते हैं समझ नहीं आया। इसके अलावा मोमबत्ती की लौ वाला प्रयोग कागज़ की नली (स्ट्रॉ) से हो पाना असंभव है। छोटी-से-छोटी नली लेने पर भी जितनी देर में लौ के काले हिस्से में से वाष्पित मोम दूसरी तरफ से बाहर निकल सकती है उतनी देर में कागज़ जल जाता है। नली को लौ के काले हिस्से तक पहुंचने के लिए बाहरी, पीले व नीले हिस्सों में से गुज़रना होता है। इन हिस्सों का तापमान काफी ज़्यादा होता है, और उससे कैसा भी कागज़ जल जाएगा। क्या प्रयोग छापने से पहले कर के देखना ज़रूरी नहीं है? 'प्रिय बरखुरदार' भी शिक्षकों के लिहाज़ से साधारण लगा।

दूसरी ओर 'आयनिक बंध और परमाणु' और 'क्यों नहीं लगता करंट' जैसे भारी भरकम लेख हैं जिनमें ढेरों अत्यंत मुश्किल अवधारणाएं एक साथ शामिल कर ली गई हैं। ऐसे लेखों को समझ पाने के लिए काफी पूर्व जानकारी की ज़रूरत है – अत: ऐसे लेख किसी किताब के हिस्से तो हो सकते हैं जहां ये अवधारणाएं एक-एक करके विकसित की जाएं परन्तु संदर्भ जैसी पत्रिका के माध्यम से ऐसी कठिन अवधारणाओं की गुत्थी यूं 'शॉर्टकट' से सुलझा पाना असंभव-सा है।

हिन्दी पत्र पत्रिकाओं, खासकर विज्ञान की पत्रिकाओं में अक्सर ये सोच भी रहती है कि हल्की-फुलकी या नाटकीय भाषा के इस्तेमाल से कठिन अवधारणाओं को आसान बनाया जा सकता है। संदर्भ में भी कहीं-कहीं यह होता दिखता है। इस भ्रम से बचें। विषय वस्तु को आसान बनाने के लिए न केवल आसान भाषा का प्रयोग ज़रूरी है बल्कि उससे भी ज़्यादा ज़रूरी है धीमे-धीमे उदाहरणों, प्रयोगों व व्याख्या के माध्यम से, आसान तरीके से अवधारणाओं की समझ बनाना, जिससे आगे जानकारी आत्मसात करने के लिए भी आधार बन सके।

संदर्भ को मिलने वाले खतों के अलावा पाठकों, खासकर शिक्षकों से अलग से भी प्रतिक्रिया इकट्ठी की जानी चाहिए। क्या ऐसा हो रहा है? ऐसा इसलिए ज़रूरी है ताकि संदर्भ दिशाहीन न हो जाए।

शशि सक्सेना
दिल्ली

बारहवां अंक पढ़कर लगा पत्रिका में निखार आता जा रहा है। सुशील जोशी का लेख 'आयनिक बंध और परमाणु' फिर से जादू कर गया, उन्हें बधाई। सवालीराम के लम्बे-लम्बे उत्तर पढ़कर लगता है कि शायद सवालीराम अब फुरसत में अधिक रहते हैं। सवालीराम के 'गति सापेक्ष है' के पृष्ठ 28 के दूसरे कॉलम में:

1. रोज़ रात को एक ही समय पर तारों की स्थिति बदली हुई मिलती थी –

पढ़कर यह भ्रम होता है कि अब बदली हुई नहीं मिलती।

2. सूर्य का पथ भी साल भर आकाश में एक-सा नहीं रहता था – पढ़कर लगता है कि शायद अब पथ एक-सा रहता है।

'मिलती थी' के स्थान पर 'मिलती है' और 'रहता था' के स्थान पर 'रहता है', होता तो भ्रमात्मक स्थिति न बनती। अरविंद गुप्ते की जन्तुओं के प्रवास की यात्रा रोचक लगी। साधना सक्सेना का लेख 'गुम होती बोलियां' काफी भारी रहा। लेख को कई बार पढ़ने पर भी मैं राष्ट्रभाषा, भाषा और बोलियों में तालमेल नहीं बिठा पा रहा हूं। अजय शर्मा के लेख 'क्यों नहीं लगता करंट' ने हमें काफी ऊपर ले जाकर भी बचा लिया, शर्माजी को साधुवाद। दिशा नवानी ने 'बच्चे महज़ बच्चे नहीं' के माध्यम से हम शिक्षकों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया है। 'प्रिय बरखुरदार' जैसी सामग्री पढ़कर लगता है कि पत्रिका को छापने के लिए पर्याप्त सामग्री नहीं मिल पा रही है। अमिताभ मुखर्जी का लेख 'मैंने प्रयोग किया' हमें कुछ न कुछ करते रहने की प्रेरणा देता है।

एस. एन. साहू
शास. आर. एन. ए. उ. मा. विद्यालय
पिपरिया, जिला होशंगाबाद

मैं 'शैक्षिक संदर्भ' की नियमित पाठक हूं। प्रत्येक अंक पढ़ने के बाद मैं विश्वास से कह सकती हूं कि आपने इस पत्रिका को प्रकाशित कर अंधेरे के क्षितिज पर प्रकाश पुंज बिखेरने का श्रेष्ठ कार्य किया है, शिक्षकों के थमे हुए ज्ञान को नई दिशा तथा विद्यार्थी के ज्ञान में उफान लाने का कार्य किया है। इसके सभी विज्ञान लेख ज्ञानवर्धक, रोचक, जिज्ञासा शांत करने वाले होते हैं। शायद यही वजह है कि मैं पत्र लिखने के लिए मजबूर हो गई।

अभी हाल ही में 13वां अंक पढ़ा। जिसमें 'पानी जब उबले', 'बंकर में जीवन', 'दिमाग भी बौराया', 'कौन भाषा कौन बोली', 'सहबंधन यानी इलेक्ट्रॉन...' तथा 'अनारको का दूसरा सपना' (कहानी) आदि बहुत पसन्द आए। अजय शर्मा का लेख 'पानी जब उबले' काफी सहज एवं सरल शब्दावली में, वर्तमान परिवेश से जोड़कर लिखा गया था। फिल्म बॉइलिंग के संबंध में जानकारी रोचक थी। 'बंकर में जीवन' लेख में दी गई जानकारी काफी रोचक, नवीन अनुभूति व अनुभव देने वाली थी। 'शुक्राणु और अंडाणु का निर्माण' लेख पर विस्तृत चर्चा की जानी चाहिए। ऐसा लगा कि जानकारी कुछ संक्षेप में दी गई है। 'दिमाग भी बौराया' जानकारी बहुत पंसद आई।

अगले अंक के इंतज़ार के साथ,

मीरा शर्मा
नगर पालिका माध्यमिक शाला
इटरा, जिला होशंगाबाद

प्यारी मासूम अनारको के बेहद प्यारे चित्र ने उसे बार-बार देखने को

मजबूर किया। सच, बचपन जैसी सुनहरी अनमोल खुशी मासूम बच्चों से छीनी जा रही है। एक समय था जब बचपन को मस्ती भरा और पूर्णतः चिंता मुक्त माना जाता था। पर अब तो बचपन भी बड़ों के समान चिंतायुक्त होता है, बचपन की शैतानी का गला भारी भरकम रसहीन किताबें, कोचिंग क्लास और माता-पिता की ज़रूरत से ज़्यादा ऊंची अपेक्षाओं द्वारा घोंट दिया जाता है। क्या बचपन को बचाने का कोई तरीका नहीं है?

बच्चों से दोस्ताना रिश्ते रखकर उनकी बुरी आदतों को भी दूर किया जा सकता है। उनमें सृजनात्मक गुणों का विकास किया जा सकता है। बच्चों से दोस्ती करने का एक बढ़िया तरीका मुझे मालूम है, इसका अनुभव भी है मुझे। बच्चों को बढ़िया कहानी सुनाई जाए जिसके पात्र स्वयं उनके नाम पर हों। कहानी में आगे क्या होगा इसकी जानकारी भी बच्चों से ली जाए यानी कि उन्हें महत्व दिया जाए। फिर देखिए बच्चों को कितना मज़ा आता है और हम उनके सबसे बढ़िया दोस्त बन बैठते हैं।

'बंकर में जीवन' – नवीनतम रोचक जानकारी के लिए धन्यवाद। पढ़ते समय स्वयं को बंकर में ही अनुभव किया।

'जब पानी उबले' दिलचस्प एवं विस्तृत जानकारी विद्यार्थियों ने भी बड़े शौक से पढ़ी। 'कौन भाषा, कौन बोली' ने वास्तव में कुछ सोचने को मजबूर किया।

कविता शर्मा, सरस्वती विद्या मंदिर
हरदा, ज़िला होशंगाबाद

बारहवां अंक मिला। इसे पढ़कर बहुत अच्छा लगा। 'दिमाग भी बौराया', 'तो धरती भी गोल निकली' आदि ऐसी बातें हैं जिनकी ओर आसानी से ध्यान नहीं जाता है। आपका यह प्रयास विज्ञान व समाज की सही अर्थों में सेवा है। मेरी शुभकामनाएं।

'ज़रा सिर तो खुजलाइए' प्रश्नों के माध्यम से जानकारी देने का अनूठा ढंग है। उत्तर देने वालों के नाम के साथ आप सही उत्तर का स्पष्टीकरण दें तो ज़्यादा लोग रुचि लेंगे।

कुल मिलाकर संदर्भ पढ़कर मन गदगद हो गया। आपका प्रयास शिखर तक पहुंचे, इसी आशा के साथ।

बेगराज जांगिड़, प्रेमनगर
श्रीगंगानगर, राजस्थान

तेरहवें अंक को पढ़ने के बाद जो लगा उसे लिख रहा हूं:

– 'बंकर में जीवन' बहुत ही अच्छा लेख है इसे पढ़ते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं, यद्यपि ग्राफ समझने में थोड़ी दिक्कत हुई परन्तु लेख बहुत ही बढ़िया था। इस तरह के शोधपरक लेख/अनुसंधान के दौरान शोधार्थी अपने कामों का दस्तावेज़ीकरण करते हैं, ऐसे दस्तावेज़ पढ़ने पर काफी अनूठे और रोचक हो सकते हैं।

– पानी उबलने से संबंधित लेख पढ़ने समझने के लिहाज़ से अच्छा है क्योंकि

हम रोज़ यह क्रिया देखते व करते हैं, पर वास्तव में उबलना क्या है इसे पढ़ा। पर लेख को पढ़ते समय लगा कि इसे थोड़ा ज़्यादा खींचा गया, खास करके दबाव को। इससे लेख थोड़ा-सा बोझिल लगा और बाद में भ्रम होने लगे। दुबारा-तिबारा पढ़ने पर 'फण्डे' साफ हुए।

'शुक्राणु और अंडाणु का निर्माण' लेख ठीक ही था। विपुल कीर्ति के इस लेख में 'घुसेड़कर' शब्द (बॉक्स की पांचवी लाईन, पृष्ठ 60) आया। यहां सम्पादन की ज़रूरत थी क्योंकि नीचे के पैरा में 'डालना' शब्द प्रयुक्त किया गया है।

'बीजों में श्वसन' – रुचि चौरे शुरूआत तो करती हैं... "बिना विशेष उपकरणों के प्रयोग" और सामग्री में कहती हैं "कोनिकल फ्लास्क, बीकर, परखनली, कांच की नली, KOH, एक छेदी कॉर्क।" यानी ये सब सस्ते या बिना लागत के हैं – दूसरा कि सामान्य से स्कूलों में आसानी से उपलब्ध हैं! चित्र में कोनिकल फ्लास्क में धागे से परखनली लटकी है जबकि विवरण में इंजेक्शन की खाली शीशी में KOH भरकर लटकाए जाने का विवरण है। यहां संपादकजी भूल गए कि चित्र और लिखित विवरण में साम्य होना चाहिए।

'तो धरती भी गोल निकली' – लेख में पृष्ठ 6.5 पर किंवदंती दी गई है कि पृथ्वी हाथियों की पीठ पर टिकी है, हाथी कछुए की पीठ पर खड़े हैं... मैंने तो अब तक यही सुना है कि पृथ्वी शेषनाग पर टिकी है, शेषनाग बैल के सींग पर टिका है।

इस लेख में बाद में कुछ और उल्लेख आना थे... ऐसा लगा। इस वजह से लेख अधूरा-सा लगा!

– 'पर्यावरण शिक्षा और आजीविका' – दुनू रॉय की पुस्तक समीक्षा में किताबों की समीक्षा से ज़्यादा अपने विचार दिए हैं जबकि समीक्षा की मूल भावना ही पुस्तक केन्द्रित (समीक्षित पुस्तक) होनी चाहिए।

पृष्ठ 85 – "विकास का पहिया कई कलियों को रौंदता हुआ निकल चुका है।" यह पंक्ति क्यों जोड़ी गई, समझ से परे है।

इस पूरी समीक्षा में संपादन ज़रूरी था। पर वो भी लेखक के 'भारी' होने से छोड़ दिया गया शायद।

– रमाकांत का भाषा वाला लेख... वे आखिर तक ठीक से समझा नहीं पाए कि क्या कहना चाहते हैं। अंत में वे सचेत तो करते हैं, पर इंगित नहीं करते कि क्या, किससे सचेत रहें।

पूरे 'संदर्भ' में मात्रा, अधूरे शब्द, 'दिमाग - दिमाग' की गलतियां और संपादन की त्रुटियां। क्या हो गया है – पटवारी को पंटवारी और भी ढेरों ऐसे शब्द!

संदीप नाईक
कालानी बाग, देवास

बारहवें अंक में छपे लेख 'गति सापेक्ष है' द्वारा सापेक्षता की धारणा को समझाने का प्रयास सराहनीय है, किन्तु यह बात गलत है कि कोपरनिकस ने सर्वप्रथम सूर्यकेंद्रित अवधारणा सामने रखी – उससे एक हज़ार साल पहले ही इस अवधारणा का जन्म हो चुका था। यह अलग बात है कि बीच के एक हज़ार साल यह बात भुलावे में पड़ी रही (देखें आर्थर केस्लर की किताब 'स्लीप वॉकर्स')।

दूसरा कि लेख की बाकि बातों से साफ होना चाहिए कि यदि गति सापेक्ष है तो पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है या सूर्य, चांद, ग्रह, तारे – पृथ्वी का, यह बात निर्विवाद नहीं है।

फर्क सिर्फ इतना है कि कौन-सी मान्यता हमारे ब्रह्मांड को समझने के कार्य को सरल बना देती है। प्रयोगों के संबंध में लिखा लेख भी मज़ेदार है।

नरेश शर्मा, अर्थशास्त्र प्राध्यापक
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद

संदर्भ सजिल्द – अंक 7 से

शैक्षिक संदर्भ

एकलव्य का प्रकाशन

संदर्भ सजिल्द: संदर्भ के सातवें से बारहवें अंक का सजिल्द संस्करण। इन अंकों में जो सामग्री प्रकाशित हुई, उनका विषयवार इंडेक्स संस्करण के साथ है। संस्करण का मूल्य 60/- रुपए (डाक खर्च सहित) है।

राशि कृपया डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001

एकलव्य
ई-1/25, अरेरा कॉलोनी
भोपाल – 462 016